मनुष्य बनो

फरवरी
१९९०

वा० मू
२१.०

शरणा गति

शुभ संकल्प,

क्षमा,

प्रेम,

निष्काम कर्म,

ब्रह्मचर्य पालन,

रक्षक

दयाल फकीर चन्दजी महाराज

मानवता मन्दिर होशियारपुर (पंजाब)

'मनुष्य बनो' के नियम

१—शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिकता के नियमों का वास्तविक दृष्टिकोण से प्रचार करना और प्रेम, सभ्यता, आदर, शिष्टाचार, सदाचार सहनशीलता और संयम की शिक्षा देना इसका मुख्य उद्देश्य है मनुष्य बनना और बनाना।

२—सन्त महात्माओं और ऋषियों की वाणी को सरल, सुबोध और साधारण भाषा में प्रचार करना।

३—सामाजिक उन्नति कारक तथा देशहित कारक लेखों को भी स्थान दिया जायेगा।

४—किसी धर्म पन्थ या सम्प्रदाय के खण्डन सम्बन्धी लेख नहीं छापे जायेंगे।

५—यह पत्र प्रत्येक मास की १५ तारीख को प्रकाशित हुआ करेगा।

६—लेखों के घटाने बढ़ाने और छापने न छापने का अधिकार सम्पादक को होगा। लेख सम्पादक के नाम भेजे जांय।

७—ग्राहकों को पत्र लिखते समय ग्राहक नम्बर व पता साफ-साफ अवश्य लिखना चाहिए। उत्तर के लिये जवाबीकार्ड आना चाहिए वी० पी०पी० से पत्रिका नहीं भेजी जायेगी। इसका वार्षिक मूल्य २०.०० है।

८—यदि किसी मास का पत्र ठीक समय पर न पहुंचे तो पहले अपने यहाँ डाकखाने से पूछताछ करके वहां से जो उत्तर न मिले व अगला अंक निकलने के एक सप्ताह पूर्व तक कार्यालय में पहुंचने पर ही दूसरी प्रति बिना मूल्य भेजी जा सकेगी।

९—प्रबन्ध सम्बन्धी पत्र, ग्राहक होने की सूचना, मनीआर्डर आदि मैनेजर के नाम से भेजनी चाहिए। मनीआर्डर कूपन पर अपना पता साफ-साफ लिखना चाहिए। और पते की तबदीली भी।

—प्रकाशक

R. S.

ओ३म पूर्णमद पूर्णमिदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते ॥

मनुष्य बनो

वर्ष ३८	फरवरी १९९०	अङ्क ५

शब्द

शीश झुकाना सहल है प्यारे शीश कटाना मुश्किल है।
दिल का लगाना सहल है प्यारे, तोड़ नभाना मुश्किल है।१।
यह मन जन्म-जन्म का चचल, चौरासी से आया है।
बात कहना सहल है प्यारे, इसका टिकाना मुश्किल है।२।
पढ़के किताबें आलिम बनकर, वाइज हर कोई बनता है।
अपने आपको काबू करके मन समझाना मुश्किल है।३।
गजल-चौपाई-छन्द-दोहरा, हर कोई गा सकता है।
तीन किस्म का गाना गायत्री, इसका गाना मुश्किल है।४।
देखा-देखी नाम को लेकर, सब सत्संगी बनते हैं।
तीसरे तिल पर ध्यान जमाकर, नाम कमाना मुश्किल है।५।
नौ दरवाजे इस शरीर के, मन की हुकूमत सब पर है।
इन दरवाजों को बन्द करके, दसवें जाना मुश्किल है।६।
बाहरमुखी हर जीव यहां पर, बाहर दौड़ता फिरता है।
अन्तरमुख होकर के दिल को, अन्दर लाना मुश्किल है।७।
अच्छी बातें पढ़कर सुनकर, औरों को दोहरा देना।
इसमें क्या मुश्किल पड़ती है करके दिखाना मुश्किल है।८।
जग रुठ तो फिकर करो मत, ईश्वर सदा सहाई है।
'गाफिल' गुरू कभी न रुठे, इसका मनाना मुश्किल है।९।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

मासिक सन्देश

मेरी अपनी ही आत्मा के अंश परम प्रिय सत्संगियो !

राधास्वामी, परम दयाल जी सहाई।

पिछले मासिक सन्देश में मैंने विदेशी दौरे की सूचना देते हुए यह बताया था कि मैं दो सितम्बर १९८९ को प्रातःकाल सेनोजे हवाई अड्डे से विमान द्वारा लास एन्जलस पहुँच गया। यहाँ पर डा० विद्यासागर कौशिक (परम दयाल जी महाराज के सुपुत्र शाह पदम जंग के साले) तथा उनकी सुयोग्य पत्नी डा० धाना कौशिक वहाँ से मुझे अपने घर ले गये। उनके घर पर उस दिन बड़े-बड़े विद्वान, इंजीनियर तथा डाक्टर सत्संग के लिये आये हुए थे। शाम तक मेरे परम प्रिय जाहन रीडन व उनकी श्रद्धालु पत्नी मेरीयन भी अपनी बैन से वहाँ पहुंच गये मेरी एक बहुत पुरानी छात्रा रूप वायल भी सत्संग को सुनने के लिये वहां पहुँच गई। काफी समय तक सत्संग, उसके बाद प्रश्न-उत्तर का सिलसिला चलता रहा। कु० रूप मेरी १९६२ में क्लेयरमान्ट ग्रेजुएट स्कूल में दर्शनशास्त्र की छात्रा थी। वह बहुत ही जिज्ञासू तथा विद्वान महिला है और आजकल वह एटारनी हैं। उन्हें १९६२ में भी भारतीय दर्शन में विशेष रुचि थी और आजकल तो वह रूहानियत की ओर बहुत शीघ्रता से आगे बढ़ रही है जब १९६२ में वह मेरी छात्रा थी तो मैं उन्हें प्राईवेटली हिन्दी पढ़ाता था और वह मुझ जर्मन भाषा पढ़ाती थीं। उनके पिता तथा माता भी मुझे बहुत प्यार करते थे।

जब १९६२ में मैं अमरीका था और भाग्य माताजी भारत में थीं तो रूथ ने भाग्यमाताजी से पत्र व्यवहार शुरू कर दिया और मैं इसी दौरान में रूथ का भाग्यमाता जी से बहुत ही प्यार हो गया और उस उस सुन्दर अमरीकन युवती ने भाग्य को धर्म बहिन बना लिया। आज भी दोनों एक दूसरे से सगी बहनों से भी अधिक प्यार करती हैं और हर सम्भव तरीके से एक दूसरे को मिलने का प्रयत्न करती है।

५ सितम्बर, १९६३ से रूथ के पिता डा० हंस जी वायल ने अपने अति विशाल भवन लाँगबीच नगर में मेरा जन्म दिन मनाया। इस समय तक भाग्य प्रियदर्शी के साथ अमेरिका आ गई थी। डा० एस०वाचल ने भाग्य और रूथ दोनों बहिनों की शादी में फोटो ली। आश्चर्य की बात है कि रूथ का चेहरा भाग्य से काफी मिलता है। दोनों भारतीय वेशभूषा में बिल्कुल ही सगी बहनें लग रही हैं। रूथ इस समय अमेरिकन सरकार की सेवा में सरकारी वकील के पद पर नियुक्त हैं। और अपने को अब भी हमारे परिवार का सदस्य समझती हैं। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह जिज्ञासु तथा बुद्धिमान महिला मानवता धर्म को फैलाने में बहुत मदद करेगी।

डा० कौशिक उनकी सुयोग्या पत्नी डा० धाना कौशिक व उनकी पूज्य माता जी बहुत ही श्रद्धालु सत्संगी हैं। पिछले वर्ष जब मैं डा० कौशिक के घर गया था, तो उनकी पूज्य माताजी भारत से उनके घर आई हुई थी उन्होंने सत्संगों का पूरा लाभ उठाया। इस समय वह अपने पुत्र के साथ देहली में हैं। उनके सभी लड़के तथा लड़कियाँ उच्च कोटि के श्रद्धालु सत्संगी हैं।

मैंने आपको कई बार बताया है कि परम दयाल जी महाराज एक ऐसे महासन्त हुए हैं जिनके निकटतम सम्बन्धियों पर भी उनकी आध्यात्मिकता की छाप है। परमदयाल जी ने अपने

कई कई सत्संगों में आपको बताया कि उनकी बेटी सुषमना को बीसबीं बार प्रसाद देने पर भी सन्तान नहीं हुई ? ऐसा क्यों हुआ ? ऐसा इसलिये हुआ क्योंकि वह उन्हें पिता ही सम झती रही इससे ये मतलब नहीं निकलता कि श्रीमती सुषमना में सद्गुरु तथा सत्संगों में श्रद्धा नहीं है। मैं तो देखता हूँ कि सुषमना जी तथा उनके पति श्री क्रान्तिकुमार जी के मन में सद्गुरु और सन्त मत के प्रति अगाध श्रद्धा है। वे मुझे परम दयाल जी महाराज का साक्षात स्वरूप मानते हैं और मुझ से बहुत प्यार करते हैं। परमदयाल जी महाराज अपनी पुत्री को इससे वे सिद्ध करना चाहते थे कि इस जगत में कर्म प्रधान है और वह चाहते थे कि कर्म सिद्धान्त को मानकर सत्संगी अपने मन की दशा को सधारते रहे सुषमना तथा क्रान्ति एक आदर्श श्रद्धालु दम्पत्ति हैं, सन्त मत तथा रूहानियत में उनकी अगाध श्रद्धा है फिर भी उनको परमदयाल के बार-बार प्रसाद देने पर भी सन्तान नहीं हुई। इससे क्या सिद्ध होता है कि कर्म प्रधान है। यह भी संभव है कि इस दम्पत्ति को सन्तान इस लिये नहीं हुई कि वे अनासक्त जीवन व्यतीत करके रूहानियत में आगे बढ़ें। कोई ४-५ वर्ष पहले इस दम्पत्ति ने जिस नन्हे बच्चे को गोद में लिया और उसका नाम सिद्धार्थ रखा सम्भवतया उनके पिछले जन्म का शारीरिक पुत्र है जो उनकी श्रद्धा तथा विश्वास के कारण उनके पास वापिस आ गया है। सन्त मत की दृष्टि से सन्त मत की यह विशेषता है कि ग्रहस्थ में रहते हुए भी प्रत्येक व्यक्ति मानवता धर्म के नियमों का पालन करते हुए जीवनमुक्त हो सकता है और अन्त में परम धाम पहुंच सकता है। इस मासिक सन्देश में, ऐ मेरे प्यारो ! इशारे ही इशारे में मैंने आपको कर्म की विशेषता का महत्व बता दिया है। इसकी व्याख्या मैं अगले (शेष पृष्ठ २८ पर)

(गताँक राधास्वामी मत से आगे)

यह काम तुमको स्वयं करना पड़ेगा। इसके बिना किये तुम्हारे लिये बचाव का कोई उपाय नहीं है। यह काम पहिले करो और अपने आप ही करो। बुद्धि मिली है। विवेक प्राप्त है। सोचने-समझने के सामान प्राप्त हैं। यही मन रूपी बर्तन के माँजने के मसाले हैं। इनके अतिरिक्त और मसाला नहीं है जब वह अच्छी तरह शुद्ध हो जायेगा तब प्रसन्नतापूर्वक जो अच्छी वस्तु इसमें रखोगे वह न बिगड़ेगी न नष्ट होगी।

—:o:—

इक्कीसवाँ वचन

बर्तन खाली (रिक्त) नहीं रह सकता

बर्तन को कोई व्यक्ति खाली नहीं रखता। उसमें कुछ न कुछ भरना ही होता है। प्रकृति में खाली या रिक्त रहने का कोई चिन्ह तक नहीं है। जब तुम तालाब से घड़ा या लोटा भर लेते हो तब आसपास का पानी खाली जगह भरने के लिये उस समय हिलकोरें मारने लगता है और उसी क्षण वह स्थान भर जाता है यही दशा उस मन रूपी बर्तन की भी होती है।

तुमने किसी व्यक्ति को बुरा ख्याल दिया, बहकाया, कुमार्गी किया या उसको भ्रम में डालकर उसको हानि पहुंचाई। इधर ख्याल तुम्हारे हृदय से निकलकर दूसरे के हृदय में गये। उधर उसके या और किसी के उसी प्रकार के ख्याल तुम्हारे अन्दर भर गये और तुम अधिक बुरे बन गये। यह न समझो कि किसी को बुरा ख्याल देकर तुम अच्छे रह सकते हो। यह असम्भव है।

किसी की बुराई सोचना उस पर अपने बुरे ख्याल से आक्रमण करना है। यह विश्वास कभी न करो कि उसे या उसके

मन को तुम्हारे विश्वास का ज्ञान नहीं है। ज्ञान कई तरह का होता है। चाकू से किसी को घायल कर दो तुम देखते हो चाकू में उसका खून लग जाता है इस तरह जिसके बुरे खयाल दूसरे के पास बदनीयत से भेजे जाते हैं उसकी बुराई को भी अनजाने हुए अपने साथ लाते हैं और बुरे से अधिक बुरा और अत्यन्त बुरा बना देते हैं और हृदय बुराई से बिल्कुल भर जाता है।

—:o:—

बाईसवां वचन

बुराई का क्रम

इस अनेकता के जगत में हर ख्याल और हर वस्तु अपनी जाति को बढ़ाती रहती है। भलाई करो भलाई बढ़ेगी, बुराई करो बुराई बढ़ेगी। ख्यालात की भी सन्तान होती है। जिस तरह तुम बाल बच्चे पैदा करके उनसे घिर जाते हो वैसे ही बुरे ख्याल सोचने से अपने हृदय में बुराई की सन्तान को इतनी बढ़ा लेते हो कि वह तुम्हारा विशेष स्वभाव बन जाता है। और तुम स्वयं इसमें लिपट-लिपटाकर गुत्थम-गुत्था की दशा में आ जाते हो। रेशम का कीड़ा अपने ही अन्दर से धागे निकाल-निकाल कर कुकरी बना लेता है और उसी के अन्दर फंस-फंसा कर बन्द हो जाता है। इस तरह बुराई का चिन्तन करने वाला आदमी भी अपनी बुराई से मारा जाता है।

तुम यह कभी न समझो कि तुम भलाई या बुराइ दूसरों के लिये करते हो। किन्तु अधिकतर अपने ही लिये करते हो। और उसका प्रभाव तुम पर ही पड़ता है। यह कारण है कि सन्त कहते हैं कि तुम अपने ऊपर दया करके केवल भलाई किया करो। इसमें अधिकतर तुम्हारी ही भलाई है। दूसरों

की बुराई भलाई तो देर में होगी। मगर तुम तो उसी स
भले बुरे बन जाओगे इसलिये मन, वचन और कर्म से सावधान
रहो कि तुमसे बुराई के क्रम की उत्पत्ति न होने पावे।

—:०:—

तेईसवाँ वचन

बुराई एक मल है

जो व्यक्ति किसी और के साथ बुराई करता है वह गुप्त रीति से उसकी बुराई को छीन-छीन कर अपने अन्दर भरता जाता है। बुराइ मल है। मल सर्वदा मल ही उत्पन्न करता है। स्त्री पुरुष से बीज लेकर उसी जैसे और उसी के भावनाओं जैसे रूप अपने शरीर से निकालती है व मल मूत्र की आकृति गढ़ कर बना देती है। इसी तरह तुम किसी आदमी का बुरा सोचते हो तो तुम उसकी बुराई को छीन लेते हो और उसकी बुराइ के भंडार बनकर तरह-२ की बुराइयां करने लगते हो उत्पत्ति का क्रम प्रकृति में एक ही ढंग पर नहीं चलता। इसके अनन्त ढग हैं। कहीं मैथुन या भोग से उत्पत्ति होती है, कहीं ख्याल लेकर उत्पत्ति होती है और कहीं मादा नर का मल खाकर उत्पत्ति करती है आदि आदि।

मैथुन से उत्पत्ति का सिद्धान्त तुम जानते हो। मल खाकर उत्पत्ति के नियम से थोड़े से लोग परिचित हैं। मोरनी मोर के साथ जोड़ा नहीं खाती। कम से कम यह बात प्रसिद्ध है कि जब मोरनी में मस्ती आती है तो नर की आँख की कीचड़ या मैल को ठोंठ से लेकर निगल जाती है तब उसी से अपने पेट से अण्डा निकालती है और मोरों की उत्पत्ति का क्रम चलता रहता है। ख्याल से भी ख्याल की उत्पत्ति होती है। तुमने किसी से अच्छी बात सुनी उसे मन में रख लिया। अब उसी

से अच्छे खयाल की सन्तान चलने लगेगी। तुमने किसी की कविता को याद कर लिया वह तुम्हारे अन्दर जाकर कविता की औलाद उत्पन्न करने लगती है। यदि तुम किसी हद तक जान सकते हो ठीक इसी तरह से बुरे आदमी पीठ पीछे दूसरों की निन्दा करते, दूसरों को हानि पहुँचाने और उनकी बुराई करते रहने से उन दूसरे आदमियों की बुराई के मल को खात है और तरह-तरह की बुराई के पैदा करने वाले होते हैं दूसरों की बुराई देखने वाला, दूसरों की बुराई बखानने वाला और दूसरों की बुराई सोचने वाला मल खाने वाला है और सूअर की तरह औरों के मल को खा-खा कर अपने आप को मलीन और घृणा के पात्र बनाते जाते हैं। आप दुखी होते हैं और दुख की औलाद को दुनिया में पैदा कर जाते हैं।

क्या यह बात अच्छी है ? कभी नहीं।

दूसरों की बुराई करने वालों, दूसरों की बुराई बखानने वालों और सोचने वालों को ईश्वर आराधना का अधिकार नहीं है क्योंकि ईश्वर उपकार है, ईश्वर प्रेम है और ईश्वर पुन्य है। जो जैसा बनेगा उसको वैसी ही वस्तु प्राप्त होगी।

राधास्वामी मत में कर्म की जो परिभाषा की गयी है वह विलक्षण है। यह कहता है— "जो कर्म कि सत् पुरुष राधा-स्वामी के चरणों की निकटता प्राप्त कराते हैं वह भले और अच्छे हैं और जिन कर्मों के करने से सत्पुरुषों के कदमों से दूरी होती जाय वह बुरे हैं।"

कुकर्मी ईश्वर से दूर और आसुरी भावों के निकट होता जाता है। यह संक्षेप में कर्मों की व्याख्या है।

इन सब बातों को दृष्टि में रखकर उपदेश किया गया है। कि हिंसा ही महापाप है और अहिंसा ही परम धर्म हैं।

इसी उसूल या सिद्धान्त पर समस्त आध्यात्मिक पन्थों की इमारत की चाहे वह कोइ क्यों न हो, नींव डाली गयी है। हिंसा करने वाला जीवित प्राणियों को खाने वाला है। हिंसा करने वाला मृतक शरीर को खाने वाला है। इनसे सावधान रहो कि तुम हिंसा की बातों को न सीखो।

अब हम इन पाँच सिद्धान्तों में से एक सिद्धान्त को समझा चुके। अब शेष चारों की व्याख्या करेंगे।

—:०:—

चौबीसवाँ वचन

पवित्रता और अपवित्रतता

अपवित्रता में दुख है और पवित्रता में सुख है। अपवित्रता घृणा की वस्तु है। पवित्रता प्रेम करने की वस्तु है।

तुम जिस समय मैले कपड़े उतार कर स्वच्छ और सफेद कपड़ पहनते हो कैसी प्रसन्नता मिलती है। तुम जिस समय अपने पेट के गन्दे मल को निकाल कर, सात्विक भोजन खाते हो कैसा सुख मिलता है। तुम जिस समय अपने शरीर को धोते हुए नहा लेते हो और मैल उतर जाता है कैसी प्रफुल्लता व प्रसन्नता आ जाती है ये प्रतिदिन की घटनाऐं हैं जिनके हृदयांगम करानेके लिये हमको किसी दर्शनशास्त्र से सहायता लेने की आवश्यकता नहीं है। अपवित्रता में स्थूलता है और पवित्रता में सूक्ष्मता है। अपवित्र को देखकर प्रत्येक व्यक्ति उससे बचना चाहता है। पवित्र को देखकर हर एक उसकी संगत की अभिलाषा करता हैं।

शरीर से पवित्र बनो, वाणी के पवित्र बनो, मन के पवित्र बनो। शारीरिक, मानसिक और वाणी की अपवित्रता से बचो

ताकि प्रफुल्लता और हर्ष प्राप्त हो और अप्रसन्नता व घृणा से बचे रहो।

बाहरी और आन्तरिक पवित्रता दोनों ही की आवश्यकता है। बाह्य पवित्रता ही अन्तरीय पवित्रता का प्रारम्भिक अंग है। नहाओ धोओ अपनी शारीरिक शक्ति को सुखप्रद बनाओ उस समय शरीर के सूक्ष्म और हल्के होने से तुम अन्तरीय पवित्रता के विषय को सोच सकोगे और उत्तराधिकारी हो सकोगे। इसके बिना होना कठिन है। जब तक शरीर पवित्र न होगा रूह(आत्मा) की पवित्रता प्राप्त करना कठिन होगी।

शरीर की पवित्रता यह है कि स्नान करो साफ सुथरे कपड़े पहनो। जिभ्या की पवित्रता यह है कि दुर्वचन कहने से बचते हुए मीठे बचन बोलो। केवल ऐसे शब्द मुंह से निकालो जो सबको प्यारे लगें। जिस सच्चाई से किसी के हृदय को चोट पहुँचती हो उससे भी बचकर रहो। हाथ की पवित्रता यह है कि उससे बुरे काम न हों किन्तु अच्छे काम होते रहें और मन की पवित्रता यह है कि गन्दे ख्यालात पास न फटकने पायें। केवल अच्छे ही खयालात से सम्बन्ध रहे। इन तीन मन,वाणी और शरीर के पवित्र कर्मों से तुम्हारा रुझान अध्यात्म की ओर होगा।

—:o:o

पच्चीसवां वचन

हक व हलाल अर्थात सच्चाई की कमाई

ईश्वर की भक्ति केवल ऐसा आदमी कर सकता है जो ईमानदारी से जीविका पैदा करता है। बेइमानी से जीविका

उपार्जन करने वाले से कभी भक्ति नहीं बन सकेगी।

तुमको हाथ-पाँव इसलिये मिले हैं कि उनसे अच्छे काम करो। बुद्धित्ता का अर्थ यही है कि सोच-समझकर ईमानदारी के ढंग से रोटी प्राप्त करो। प्रकृति की देन अर्थात बुद्धि और हाथ-पाँव को पाकर तुम व्यर्थ दूसरों के धन दौलत पर कुदृष्टि क्यों डालते हो। जो व्यक्ति दूसरों का धन खाता है उसको दूसरे के आधीन और कृतज्ञ होना पड़ता है। पराधीनता इस दुनियां में सबसे बुरी आपदा है और कृतज्ञता या और किसी का अहसान उठाना वह प्राणिघातक शत्रु है कि मनुष्य के आत्मसम्मान को मटियामेट कर देता है। उसके सदाचार की अवस्था बिगड़ जाती है। हृदय व्यर्थ कृतज्ञ होकर स्वतन्त्र नहीं रहता और अनावश्यक रूप से गुलाम हो जाता है। चापलोसी करने का स्वभाव हो जाता है निकम्मा हो जाता है हाथ-पाँव और हृदय व मस्तिष्क में जंग लग जाती है। ताले की ताली जो सदा चलती रहती है चमकती हुई साफ और सुथरी रहती है जो यूं ही पड़ी रहती है, वह मोचां या जंग लाकर कमजोर और बेकार बन जाती है यह तुम जानते हो।

इसके अतिरिक्त तुम जिसकी रोटियां तोड़ोगे उन रोटियों का प्रभाव अन्दर आयेगा। मालूम नहीं कि किस व्यक्ति ने किस तरह धन की कमाई की है। धन के पुजारी अनुचित ढंग से धन कमाते हैं और जो व्यक्ति उनका धन लेता है उसमें अनजाने बुराई के भाव उत्पन्न हो जाते हैं।

जो व्यक्ति भीख मांगकर खाता है वह साधन व अभ्यास के अयोग्य हो जाता है। फकीर हो या साधू सबके लिये यही नियम है। क्या कारण है कि वैरागी घर छोड़कर घर पर मारे-मारे फिरते हैं और उनमें आध्यात्मिकता नहीं आती। उसका कारण स्पष्ट है। इन निकम्मों ने अपने हाथ पाँवों को

तो जवाब दे दिया। दूसरों की झूठन पर जीवन बिताने लगे। जो किसी का झूठा खायेगा वह अपवित्र रहेगा झूठा वही नहीं है जो किसी थाली का बचा खुचा हो, बल्कि जो किसी व्यक्ति से रुपया-पैसा लेता है, अन्न लेता है, यह सब की सब झूठन है जो बचा हुआ होता है वही तो दिया जाता है। इसलिये इससे भी बचकर रहने की अत्यन्त आवश्यकता है :

परम सन्त कबीर साहब भीख माँगने के बिल्कुल विरुद्ध थे। उनका वचन है कि :

(१) पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख।
साँगी जती का पहन कर, घर घर माँगी भीख ॥

(२) माँगन मरन समान है, मत कोई माँगे भीख।
माँगन से मरना भला, यह सतगुरू की सीख ॥

(३) आब गया आदर गया मुख से गया स्नेह।
यह तीनों तब ही गये जब हो कहा कुछ देह' ॥(१)देय

जो साधू या फकीर गृहस्थी का अन्न लेता है उसमें फकीरी की शान नहीं होती। जो गृहस्थी किसी गृहस्थी का धन लेता है वह पतित हो जाता है और जो गृहस्थी किसी साधू महात्मा का धन ले लेता है वह ऐसी अधोगति को प्राप्त होता है कि फिर किसी के सुधारे भी नहीं सुधरता।

—:o:—

छब्बीसवाँ वचन

एक दृष्टान्त

एक पंडित किसी शहर में कथा सुनाया करता था। एक दिन उसकी कथा में किसी धनाढ्य पुरुष की स्त्री आयी और उसने अपनी नथ को उतार कर जमीन पर रख दिया। कथा की समाप्ति पर वह भूल गई और नथ को वहाँ ही छोड़ गई

जब सब लोग चले गये उस पंडित की दृष्टि उस नथ पर पड़ी मुंह में पानी भर आया और चुपके से आकर उसे जेब में रख लिया। नीयत में मलीनता आ गई, किन्तु आदमी समझदार था संभल गया और घर जाते समय राह में सोचने लगा कि मैंने क्यों आज अपनी नीयत बिगाड़ी। पहले तो ऐसा कभी नहीं हुआ था। इस तरह वह सोचते-सोचते घर पर पहुचा। अपनी स्त्री को बुलाकर पूछा :-आज किसके घर से रसोई की सामग्री आयी थी ? स्त्री ने उत्तर दिया : पड़ौस के सुनार ने सीधा भेजा था। पंडित ने सुनार को बुलाया। पूछा :-भाई ! सच-सच बताना तुमने जो सीधा भेजा था वह किस तरह का था ? पहिले तो सुनार उत्तर देने से कतराता रहा तत्पश्चात उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि :-महाराज ! परसों एक व्यक्ति नथ बनवाने आया था। सुनारों के स्वभाव के अनुसार मैंने उसके सोने में से एक टुकडा काट लिया और नथ बनाकर नथ वाले को दे दी और उससे मजूरी ले ली। मैंने कटे हुए सोने की बाबत सोचा कि चोरी का माल सब क्यों खाऊँ। लाओ समें से थोड़ा दान खैरात कर दूँ और यह सीधा जो मैंने आपके घर भिजवाया है उसी से खरीदा गया था। पंडित के होश ठिकाने हुए। सुनार को तो उसने कुछ न कहा, मगर स्त्री को डांट बताई कि :- सावधान ! आगे किसी का सीधा घर में न आने पावे। जो कुछ मैं कथा से लाऊँ उसी से रसोई बनायी जाय।' दूसरे दिन उसने कथा के समय वह नथ धनाढ्य की स्त्री को दे दी और तीन दिन तक गरीब ने उपवास किया और कुछ दान किया। तब उसके मन में शान्ति आई।

इस तरह दूसरों के अन्न का प्रभाव होता है।

—:o:—

सत्ताईसवां वचन

सत और असत

सत क्या है ? और असत क्या है ? यह हर अभ्यासी या अभ्यास के इच्छुक के सोचने की बात है।

सत वह है जो तीनों काल भूत, भविष्यत और वर्तमान में रहे। असत वह है जो अस्थायी हस्ती या सत्ता रखता हो। अभी है। थोड़ी देर में नहीं है।

क्या यह दुनियाँ सत है ? दिखायी तो वह दे रही है। उसी का सब व्यवहार कर रहे हैं और इस दृष्टि से उसे सत कहा जाय तो कोई हर्ज नहीं है। लेकिन सोचने से मालूम होता है कि यह और इसके सब सामान केवल थोड़ी देर के लिये हैं। आज है कल न होंगे। आदमी भला चंगा दिखायी दे रहा है, बीमारी आयी और वह मर गया। पहिले था। अब नहीं रहा फिर उसे कैसे सत कहा जाय।

धन दौलत है। लड़के वाले हैं। मान बड़ाई है। बैंक का देवाला निकल गया। धन-दौलत जाते रहे। महामारी आयी लड़के वाले छिन गये। कोइ काम किसी से बन गया आदमियों की राय बदल गयी और लो मान सम्मान भी जाता रहा। दौलत खतरे में है। सन्तान आशंका में हैं। मान-सम्मानखटके में हैं। क्या ये वस्तुऐं दिल देने के सामान हैं ? और क्या यह इस योग्य हैं कि हम व्यर्थ इनकी प्यार प्रीति का दम भरे।

जो किसी दुनियाबी वस्तु से मन लगाता है, उसे एक दिन मन की खिन्नता की चोट भी सहनी पड़ती है। वह कठोर हृदय बन जाता हैं और उस वस्तु से मन के हटाने में बड़ा दुख होता हैं। दुनियाँ दुख से भरी पड़ी हैं। कोइ धन के लिये चिल्लाया करता है, कोइ सन्तान के लिये और कोइ मान-

बड़ाइ के लिये। यह मिल भी जाते हैं। परिश्रम किसी का व्यर्थ नहीं जाता। कर्म का फल अवश्य मिलता हैं। लेकिन क्या यह ठहराऊ हैं? राम राम कहो। आकाश पर बादल हैं। उसकी छाया में कुछ आराम मिल रहा है। बादल हटे और छाया गई। अब बताओ आराम की वह सुरत कहाँ गयी? मूर्खों ने रेत की दीवार बनायी। हवा का झकोला लगा और दीवार अड़-अड़ाधम करके गिरी और जमीन में मिल गयी। अब वह मकान कहां रहा?

यही सब इस दुनियाँ की अवस्था है। क्षणभंगुरता इसका गुण है। अब यह सोचना है कि आया हम इसके होकर रहें और तमाम उम्र इसकी स्तुति करते रहे या कोई ऐसी अवस्था भी हो जो स्थायी हो और उससे मन लगायें ताकि उससे कभी पृथक न हों व हमको उसके बिछोह का दुःख न उठाना पड़।

जिनको थोड़ा सा भी विवेक है, वह इस तरह सोचने से रुक नहीं सकते और कोई व्यक्ति उन्हें रोक सकता है। आज जिभ्या को दबाब देकर और शक्ति से बन्द कर दो, कल वही प्रश्न उत्पन्न होगा। विवश होकर इन्हें सोचना और विचार करना पड़ेगा। जब तक वह किसी अन्तिम निर्णय पर न पहुँच लेंगे, सम्भव नहीं कि उनको शान्ति मिले। यह मानवीय स्व-भाव का संक्षिप्त वर्णन है। मूर्ख के विषय में कुछ भी नहीं कहा जाता, मगर समझ वाले भी तो मनुष्यों ही में हैं।

इसी सत और असत का विचार एक ऐसा प्रबल भाव है, जिसके आने से विवेकी पुरुष बच नहीं सकता और इस तरह के विचार पैदा होते ही उसको विवेक शक्ति में उन्नति प्रार-म्भ हो जाती। वह असत को छोड़कर सत के स्वीकार करने

पर आरूढ़ हो जाता है और सत की उपासना उसके जीवन का विशेष स्वभाव बन जाता है।

इस सत और असत के सिद्धान्त का एक दृष्टिकोण तो यह है, दूसरा दृष्टिकोण झूठ और सच है क्योंकि सत को सच और असत को झूठ कहते हैं। झूठ वह है जिसके खड़े होने के पाँव नहीं होते और सच वह है जिसके पाँव होते हैं। एक में दृढ़ता है दूसरे में दृढ़ता नहीं है। झूठा आदमी चचल चित्त और असाहसी रहता है। सच्चे मनुष्य में धैर्य और दृढ़ता आती है दुनियां सत्य पर ठहरी हुई है जिसकी सहायता से उसका व्यवहार और व्यापार किया जाता है। वह सचाई हो है यदि यह न हो तो कभी दुनियाँ का काम नहीं हो सकता। झूठ-झूठ है और सच सच है।

—:o:—

अट्ठाईसवां वचन

सच और झूठ का अन्तर

सच और झूठ में यह अन्तर है कि सच में भय, लाज और झिझक नहीं होती और झूठ में भय, लाज और झिझक होती है। यह सचाई की परिभाषा है। जिसमें भय, संकोच और झिझक होती है वह अत्यन्त निर्बल होता है और जिसमें निर्भयता, निःसंकोचता होती है और झिझक नहीं होती है, वह शक्तिशाली होता है। निर्बलता अवगुण है और शक्ति गुण हैं। एक का जीवन सफल होता हैं। दूसरे का निष्फल रहता हैं। निर्भयता मानवीय सदाचार की श्रेष्ठता है। जिसमें यह गुण होगा उसमें वीरता और साहस होगा। जो इससे खाली होगा वह कायर और निकम्मा होगा। निर्भय पुरुष चिन्ताविहीन

हो जाता हैं और चिन्ताविहीन होने से समय पर आसक्ति में अनासक्ति और अनासक्ति में आसक्ति का गुण उत्पन्न हो जाता हैं और इस प्रकार का मनुष्य बन्धन में रहता हुआ निरबन्ध और निरबन्ध होता हुआ बद्ध रहता हैं। यह सत्य के धारण करने और झूठ के त्याग करने का लाभ है।

जिसमें सच्चाई आ जाती हैं वह चापलूसी और चोरी आदि अवगुणों से रहित हो जाता है।

यह चार बातें सूक्ष्म रूप से वर्णन कर दी गयीं। अब पांचवी बात की ओर ध्यान देना चाहिए।

—::•—

उन्तीसवाँ वचन

इष्ट पद

हम जो काम करते हैं,उसमें कोई न कोई अर्थ या उद्देश्य होता है। यह अर्थ ही इष्ट पद है इसकी व्याख्या और विवरण बुद्धि में अवश्य बिठा लेना चाहिए,क्योंकि जब तक उसका सार समझ में न आ जाय तब तक उसका महत्व हृदयांगम न होगा।

जीवन का ध्येय क्या है ? इस ध्येय में केवल तीन बातें सम्मिलित हैं – (१) जीने की अभिलाषा (अमर होने की अभिलाषा) (२) ज्ञान की प्राप्ति,(३) और पूर्ण आनन्द। इन के अतिरिक्त आदमी को चौथीबात की आवश्यकता नहीं रहती हम जो काम करते हैं, उसका कारण यही होता है कि हमको जीवन ज्ञान और आनन्द प्राप्त हो। कोई व्यक्ति मरना नहीं चाहता, कोई मूर्ख या अज्ञानी नहीं रहना चाहता और कोई व्यक्ति दुखी होना नहीं चाहता। यह ही प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा रहती है। बच्चों से बूढ़ों तक में यह इच्छा कूट-कूटकर

भरी रहती है। केवल इन्ही बातों के लिये, पढ़ना-लिखना पूछना गछना ज्ञान की बृद्धि की इच्छा से किया जाता है काम करना, व्यवसाय करना जीवन को स्थित रखने के उद्देश्य से होता है। शादी विवाह· राग रंग आदि आनन्द और सुख के लिये होते हैं। चाहे जिस तरह सोचो दुनियाँ का कोई व्यवहार इनसे खाली दिखायी न देगा। आदि से अन्त तक यही ३ बातें मनुष्य के हृदय को गति देने वाली प्रतीत होंगी। यह तीनों ही मिली-जुली हुई हर प्राणी के प्रारव्य आदर्श और गन्तव्य स्थान हैं और जिनको जितनी इच्छा इनकी प्राप्ति की होगी वे उतना ही अधिक उन्हीं के उधेड़ बुन में आयुपर्यन्त व्यस्त दिखाई देगा

यह मानवीय जीवन की त्रिपुटी है। इस त्रिपुटी में अद्वैत है। एक में तीनों और तीनों में एक हर समय एकत्रित रहते हैं किसी की भी शक्ति नहीं है कि इनमें से किसी एक को पृथक कर दिखाये।

जहाँ जीवन है वहाँ ज्ञान और आनन्द रहेगा और जहाँ आनन्द है वहाँ ही जीवन और ज्ञान की झलकती हुई सूरतें दिखाई देंगी।

जीवन के बिना ज्ञान और आनन्द का होना सम्भव नहीं है। ज्ञान के बिना जीवन और आनन्द असम्भव है, और आनन्द के बिना न जीवन रह सकता है और न बुद्धि के कार्य होते हैं।

मृत्यु के भय को हृदय से दूर करो। अज्ञानता रूपी आपदा से अपने आपको मुक्त करो। दुख से और दुखदाई कामों से बचो। यह तो इस सिद्धान्त का निषेधात्मक (Negative) दृष्टिकोण है जीने की इच्छा करो। आनन्द को प्राप्त करो। ज्ञान से काम लो। यह इस सिद्धान्त का विधेयात्मक (Positive) दृष्टिकोंण है। बात एक है, मगर वह दो विभिन्न ढंगों

से वर्णन की जाती है।

राधास्वामी मत कहता है कि रूहानियत अध्यात्म) की प्राप्ति के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि निषेधात्मक बातों से अलग रहकर स्वीकृति योग्य विधेयात्मक(Peositive)बातों से सम्बन्ध रखो। तब तो तुम अभ्यास कर सकोगे वर्ना तुमसे साधन व अभ्यास न बन सकेगा। पहिले इन बातों को जिस तरह चाहो अच्छी तरह समझ लो। अगर इन साधारण और प्रारम्भिकबातों की समझ नहीं आई तो फिर शब्दयोग करने से कोई लाभ न होगा यों ही अनाप-सनाप कुछ न करो। बिना सोचे-समझे हुए जो काम करोगे वह भय से रहित न होगा।

जीवन, आनन्द और ज्ञान यही सम्मिलित रूप से से इष्ट पदार्थ हैं।

—:o:

त सवां वचन

सच्चिदानन्द

इन तीन बातों का एक नाम 'सच्चिदानन्द' है। सत,चित्त आनन्द सच्चिदानन्द है। सत जीवन है। चित्त ज्ञान है और आनन्द खुशी है।

यह कहाँ है ? यह तुम में ही है मगर तुम नहीं जानते हो और न जानने के कारण से तुम किसी और में जीवन, ज्ञान और आनन्द की तलाश करते हो। इसी का नाम अज्ञान, अविद्या और विस्मृति है।

यदि तुम जीवित न होते तो फिर जीवन के प्रेमी क्यों होते यदि तुम में ज्ञान न होता तो तुम ज्ञान को प्यार क्यों करने लगे थे ? अगर तुममें आनन्द का माद्दा पहिले से ही न होता तो तुम आनन्द के इच्छुक क्यों होते ? यह बहुत साधारण

बातें हैं जिन पर थोड़ा सा विचार करने से भली प्रकार समझ में आ जाता है कि यह तीनों स्वभावतः हम में सदा से हैं।

मछली चूंकि पानी से बनी है इसलिये वह पानी में रहना पसन्द करती है। पक्षियों का चूंकि प्राकृतिक सम्बन्ध वायु से है इसलिये वह वायु में रहते हैं। और इसी तरह समझ लो। इस प्रकार चूंकि तुम स्वयं सच्चिदानन्द हो इसलिये त चित्त और आनन्द के प्रेमी बने हुए हो। यदि तुम सच्चिदानंन्द न होते तो कभी सम्भव नहीं था कि तुम इस तरह सत-चित और आनन्द के पीछे दौड़ते फिरते। जो जैसा है वैसा ही तो करेगा। क्या इससे भी अधिक तुम और कोई बड़ा प्रमाण चाहते हो? इससे अधिक शक्तिशाली प्रमाण तुमको किसी जगह न मिलेगा और वह हो क्या सकेगा? यह स्वयं सिद्ध प्रमाण है। हाँ, प्रत्येक व्वक्ति अपनी अज्ञानता के कारण इस का विरोध करेगा। इसका कारण यह है कि हृदय के आवरण नहीं हटे। जो अंधेरे में है, उसे सार वस्तु दिखायी नहीं देती। और असलियत के दिखायी न देने से व्यर्थ के तर्क वितर्क गढ़ता रहता है। थोड़ा सा हृदय के दूषित आवरणों को हटने ती दो फिर स्वयं सार वस्तु का ज्ञान होना प्रारम्भ हो जायेगा और आप ही आप तर्क-वितर्क बन्द हो जायेंगे। अज्ञानी मनुष्य अपने को देखता नहीं पुस्तकों के वर्णन की ओर दौड़ता है और उनको भी ज्यों का त्यों न समझकर खण्डन-मण्डन की उलझन में पड़ा रहता है। यही कारण है कि राधास्वामी मत ने केवल पुस्तकों के अध्ययन ही में लगे रहने को मना किया है। केवल अपके आपको देखो। अपने आपे पर ध्यान दो। अपने आपका ही अध्ययन करो तब यह रहस्य सरलता से हल ही रहेगा और तुम जान जाओगे कि तुम स्वयं ही सच्चिदानन्द मूर्ति

हो। तुम्हारे अतिरिक्त और सच्चिदानन्द क्या होगा ?

क्या तुम जीवन को नहीं चाहते ? क्या तुमको सार तत्व से घृणा है ? क्या तुम सुख की तलाश में नहीं रहते ? यदि ये है और इन्हें सच्ची बात मानते हो तो फिर बहकते क्यों हो ? सन्तोष के साथ अपने ही अध्ययन में क्यों नहीं लगते हो ?

मगर मूर्खता को क्या कहा जाय। आदमी तमाम दुनियाँ का ज्ञान तो चाहता है लेकिन अपनी ओर से अनभिज्ञ रहता है। इससे अधिक आश्चर्यजनक बात या हो सकती है या हो सकेगी ।

तुम स्वय सच्चिदानन्द हो और सच्चिदानन्द की इच्छा इष्ट पद और गन्तव्य स्थान तुम में है।

—:o:—

इक्तीसवां वचन

अपने आप को समझ स्थूल अवस्था या जाग्रति में

यहाँ जो बात कही जाती हैं वह केवल समझदार आदमी के लिये हैं। जिनको समझ नहीं है उनके लिये कहना-सुनना अभी व्यर्थ हैं। हम भी सन्तोष कर रहे हैं और उनको भी सन्तोष के साथ प्रतीक्षा करने की आवश्यकता हैं। जब वह समझ के घाट पर आयेंगे उस समय हमारी बात की समझ उसमें आ जायेगी बिना समानता परस्पर प्रेम और अनुसारता के मेल नहीं मिल सकता। इस कारण से वाणी केवल उन्हीं पर प्रभाव डाल सकती हैं जो किसी अंश तक एक विचार और एक स्वभाव के हो गये हैं। जब हम तमाम मनुष्यों को एक व्यवसाय के एक विचार के और हमदर्द नहीं बना सकते तो सबको एक धर्म का कैसे बना सकते हैं। यह इस समय असम्भव हैं।

पहिले वचनों में हमने कहा हैं कि तुम ही सच्चिदानन्द हो और सत, चित, आनन्द तुम ही हो इसका एकाध दृष्टान्त देकर हम फिर दूसरी बात वर्णन करेंगे क्योंकि अभी जो कह रहे हैं वह केवल भूमिका मात्र है। इसकी व्याख्या आगे चलकर करेंगे।

सच्चिदानन्द में तीन शब्द हैं। सत, चित, आनन्द या आनन्द, चित और सत। पहिले आनन्द को ले लो।

आनन्द सुख है। सुख दुनियाँ में कई तरह पर मिलता है। खाने का सुख, पीने का सुख, भोग का सुख। इस सुख की इस दुनियाँ में तीन श्रेणियाँ हैं। स्थूल सूक्ष्म और कारण। स्थूल सुख शारीरिक सुख है, सूक्ष्म सुख मानसिक है और कारण सुख है। इन शब्दों को याद रक्खो ताकि स्थान-स्थान पर वचनों के आध्यात्मिक असली भाव को ज्यों का त्यों समझ सको।

शारीकि सुख जाग्रति में प्राप्त होता है। जाग्रति अवस्था वह हैं जिसमें शरीर की इन्द्रियां गतिमान रहकर सुख भोगती हैं। जिव्हा को रस का सुख, आँखों को रूप का सुख कानों को राग का सुख, नाक को गन्ध का सुख और चमड़े को छूने का सुख मिलता है। पाँच अर्थात जिव्हा, आँख, कान नाक और चमड़ा पाँच इन्द्रियां हैं और इनके पाँच भोग रस, रूप शब्द, गन्ध और स्पर्श है। जब तुम जागते हो तब ही तक इनका सुख भोगते हो। इनको अच्छी तरह सोचकर समझ लो।

अब यह देखो कि आया इन इन्द्रियों में सचमुच सुख भोगने की शक्ति है या नहीं ?

विचार करने पर प्रतीत होता है कि इन्द्रियाँ सुख नहीं हैं केवल सुख भोगने के यन्त्र हैं।। यह क्यों ? क्योंकि जहाँ नींद आ गई इन्द्रियाँ बेकार और निरर्थक हो जाती हैं। सोने वाले की जिव्या पर मिठाई रख दो। क्या उसे चखने के स्वाद का

सुख मिलेगा ? कभी नहीं । न वह तुम्हारी बात को सुनेगा । दुर्गन्ध सुगन्ध को सूंघ सकेगा । न तुमको हाथ से छू सकेगा । यह तुमको विश्वास है ।

इस प्रकार यदि किसी को अचेतन्यता आ जाय तब भी वही दशा होगी । यदि वह बीमार हो जाय तो उस दशा में भी किसी अंश में अचेतन्यता आ जायेगी । ऐसा क्यों होता हैं ? यदि अंगों या इन्द्रियों में सुख भोगने की असली शक्ति होती तो वे नींद में बेहोशी में और बीमारी में भी भोग के पदार्थ का स्वाद ले सकतीं । लेकिन यह बात देखने में नहीं आती । इससे साफ प्रगट हैं कि इनमें स्वयं सुख भोगने की शक्ति नहीं हैं । यह शक्ति और शक्ति से शक्तिशाली हो रही थी । वह शक्ति कहीं चली गई और यह बेकार, गतिहीन और बेजान हैं । होने को तो अब भी हैं, मगर बिल्कुल निकम्मी ।

सोचो, इनकी शक्ति चलो कहां गई । बात यह थी कि शक्ति किसी अन्य स्थान से आया थी और वह धार की सुरत में आई आयी थी । जब तक हाथ पाँव में धार थी तब तक वह सुख के कार व्यवहार के यन्त्र थीं । शक्ति चली गयी और वह बेकाम हो गयीं ।

इस धार की समझ बिल्कुल साधारण सी बात हैं । हाथ की नस नाड़ियों में जब तक धार हैं तब ही तक वह रख सकता हैं पकड़ सकता हैं छू सकता हैं मुट्ठी को बाँध सकता हैं और खोल सकता हैं । यदि पहुँचे पर मजबूती के साथ रस्सी या सूत को जकड़कर बाँध दिया तो धार का आना जाना बन्द हो गया । अब हाथों से कहो कि मुट्ठी को तो बन्द करे लेकिन धार के रोक देने से वह न तो मुट्ठी को खोल सकेगा और न खुली मुट्ठी को बन्द कर सकेगा । यह अनुभव प्रत्येक व्यक्ति हैं, होता है और हो सकता हैं ।

धार के आने-जाने का सिलसिलाबन्द हो जाता और वह उठने चलने और हिलने से मना कर देता है, क्योंकि धार ही उसकी गति और चाल का कारण थी। वह नहीं रही। इसलिये वह निकम्मा हो गया। यही हाल और अंगों का है। जिह्वा से धार खिसकी नहीं कि वह न तो चख सकती है न बोल सकती है। कान से उस धार को जरा चले जाने दो। वह बहरा हो जायेगा। नाक से धार को पृथक हो जाने दो और सूंघने की शक्ति उससे विलग हो जायेगी। यह प्रत्येक मनुष्य जान सकता है।

धार ना आना कई तरह पर बन्द हो जाता है। नींद में, बेहोशी में, बीमारी में, तवज्जह के हट जाने से और बन्द लगा देने से वह रुक जाती है और मृत्यु के समय तो वह इतनी खिच जाती है कि शरीर में वह रहती ही नहीं। उसके न रहने ही का नाम मृत्यु है।

इन शब्दों से तुम्हारी समझ में आ गया होगा कि इंद्रियां केवल इस स्थूथ शरीर में किसी और ही शक्ति के भोग-विलास के यन्त्र और साधन थीं। वह शक्ति नहीं रही और ये निकम्मी हो गयीं। वह शक्ति तुम ही तो थे और तो कोई भी नहीं था। जाग्रति की दशा को तुमने समझ लिया अब अन्य मन्डलों की ओर चलो।

—:०:—

बत्तीसवाँ वचन

अपनी समझ सूक्ष्म मंडल या स्वन्नावस्था में

तुम सो गये। शरीर मुर्दा बन गया। तुम न बोलते हो, न हिलते-डोलते हो। अभी तक तुम शरीर में हो मगर खिच गये

हो। इन्द्रियों के स्थान को छोड़ बैठे हो और तुम्हारे सिग जाने से यह बेकाम है। अब तुम चले कहाँ गये ? इस पर पर विचार करो।

सोते समय तुम अपने अन्दर खिच रहे। मन के स्थान पर पहुचे। इन्द्रियाँ तो अचेतन्य और गतिहीन पड़ी हैं मगर अन्दर ही अन्दर काम कर रहा है। इससे तुमको इन्कार हो ही नहीं सकता, क्योंकि तुम ही स्वप्नावस्था में तरह-तरह के सपने देखा करते हो। एक बिल्कुल नई दुनिया आ गयी। जिसके दृश्य आँखों के सामने हैं, तुम वहाँ भी सूंघते, चसते, बोलते, छूते, देखते और तरह-तरह के व्यवहार करते हो। वहाँ लड़ाई भी है। चलना-फिरना भी है। मित्र, सुहृद, सम्बन्धी व अन्य पुरुष सब ही तो हैं। मन में थोड़ा सा ख्याल आया नहीं कि इच्छानुसार सूरतें उत्पन्न होने लगी। जाग्रति में तो तुम दुनियाँ के सामान के इकट्ठा करने का काम इंद्रियों से लेते थे। यहां शक्ति बढ़ी-चढ़ी है। हाथी का ख्याल आया हाथी मौजूद है। आकाश में उड़ने की इच्छा हुई और तुमको पर लग गये। कोई तुम्हें पकड़ना चाहता है और तुम सरलता से ऊपर उड़ जाते हो। शेर आया और तुम अपनी शक्ति से उस का जबड़ा पकड़कर चीर देते हो। यहाँ यदि तुम विजयी हो जाते हो तो कभी-कभी पराजित भी हो जाते हो। यदि सुख होता है तो दुख भी होता है और यह घटनायें केवल विचारों के आने ही से क्षणमात्र में प्रगट हो जाती है।

नाम के लिये भी देर नहीं होती। पन्द्रह मिनट तक या एक ही दो मिनट के स्वप्न में तुम इतने काम कर लेते हो कि जाग्रत अवस्था में शायद हजारों वर्ष में भी न कर सकते। उस का कारण यह है कि जाग्रत अवस्था स्थूल थी। यहाँ शक्ति में स्थूलता थी। यह कारण है कि काम में देर हुआ करती थी।

यह सूक्ष्मता का स्थल है और शक्ति भी सूक्ष्म है अतः जो चाहते हो क्षणमात्र में हो जाता है।

यह कैसे आश्चर्य की बात है कि एक ही क्षण में मां-बाप राजा-प्रजा, सेर व शिकार सब ही कुछ उत्पन्न हो-होकर मिटते जाते हैं और तुम ही इन सबके पैदा करने वाले हो। ईश्वर की महिमा है। इससे अधिक क्या कहा जाय।

इस मण्डल में उसी धार के खिच आने से मन शक्तिशाली हो जाता है। और शक्तिशाली होकर वे तरह-२ को अठ-खेलियाँ खेलने लगता है। तुम चूंकि परतन्त्रता के साथ उस दशा में जाते हो तुम्हें उसका पता नहीं लगता हम स्वतन्त्रता से स्वयं जाते हैं, इस कारण हमको उसका ज्ञान रहता है। काम तो जो हम करते हैं वही तुम भी करते हो, लेकिन अन्तर ये है कि तुमको मन की अवस्था की खबर नहीं है हमको खबर है। हम स्वयं ही अपनी शक्ति से जिस तरह का स्वप्न देखना चाहते हैं वैसा ही पैदा कर लेते हैं और उससे सुखी और आनन्दित होते हैं तुम भी चाहो तो ऐसा कर सकते हो बात कठिन नहीं है। केवल थोड़ा सावधान रहने की आवश्यकता है।

इसी मन के मण्डल में भी सुख का सामान है और तुम थोड़ा सा ध्यान देने से उनको पैदा कर लेते हो। यहाँ शरीर की भांति इन्द्रियाँ और अंग भी हैं। बाहर की इन्द्रियाँ तो काम नहीं देतीं। मन यहाँ नई व सूक्ष्म इंद्रियाँ स्वयं ही बना लेता है और उनसे काम लेता है। जैसा शरीर वैसा मन चाहे या कहो जैसा मन वैसा ही शरीर। यह मन भी एक तरह का शरीर है जिसमें कोई विशेष शक्ति धारों की सूरतों में रहती है जब तक वह धार है तब तक मन काम करता है और जब मन के अन्दर से वह धार खिच गई शरीर की तरह उसकी

भी मृत्यु आ जाती है और वह भी निकम्मा बन जाता है।

शरीर के अंगों से धार के खिंच जाने का भेद तो तुमको मालूम हो गया और तुम समझ भी गये, मगर मन से असली शक्ति की धार किस तरह खिंच जाती है, यह तुम थोड़ी कठिनता से समझोगे। अभी तक तो तुम इस मन की समझ नहीं रखते। मगर हम तुमको अपने शब्दों से और दृष्टांत से कुछ न कुछ समझा कर छोड़ेंगे।

यहाँ केवल इतना और समझ लो कि जिस तरह जगत में शरीरऔर शरीर के अंग किसी और ही शक्ति के यंत्र थे और सुख दुख के साधन बने हुए थे उसी तरह स्वप्न में ये मन भी उसी शक्ति का यंत्र था और वहां सुख दुख का साधन बना हुआ था।

मगर वह खिंच गई। अब मन गतिहीन और अचेतंय है। क्यों ? क्योंकि धार के खिंच जाने के कारण अब वह स्वप्न नहीं देखसा और न स्वप्न के खेल तमाशे से उसे काम है। उस का प्रमाण यह है कि वह स्वप्न नहीं देखता। मर गया। जिस तरह धार के खिंच जाने से शरीर नाकारा हो गया वैसे ही इस मन की भी दशा हो गयी। इससे अधिक और प्रमाण तुम क्या चाहते हो। क्या तुमको उसका भी ज्ञान नहीं है। सुनो ! गहरी नींद या सुषप्ति में ये दशा रोजाना तुम में आया करती है। इससे तुम इंकार तो नहीं कर सकते। इंकार करो और हम देखेंगे कि तुम किस तरप इंकार करते हो।

दो अवस्थाओं को तुम जान गये और ये भी प्रमाणित पो गया कि शरीर और मन दोनों तुम नहीं हो किंतु ये विशेष अवस्थाओं में तुम्हारे आधीन हैं।

—:०:—

(पेज ३ का शेष) मासिक संदेश में करूँगा।

मैं चाहता हूँ कि आप सब कर्म के सिद्धाँत को मुख्य मान कर अपने अच्छे और बुरे दोनों प्रकार के कर्मों में समता का अनुभव करें और मानवता धर्म के उसूलों पर चलते रहें। इससे आपका लोक तथा परलोक दोनों बन जायेंगे।

हाँ, तो मैं आपको बता रहा था कि मैं प्रिय जाहन और उनकी पत्नी मेरियन २ सितम्बर को डा० कौशिक के घर पर रहे। पवन कुमार शर्मा मेरे बहुत ही प्यारे बेटे के छोटे भाई रोहित के बार-बार के अनुरोध पर मुझे अपने घर लासएंजलाज में जाना पड़ा। सायकाल को रोहित उनकी सुयोग्या पत्नी सुधा तथा सुधा जी की माता ने मेरा बड़े आदर से सत्कार किया। सायंकाल के भोजन पर इस श्रद्धालु दम्पत्ति ने सुधा जी के भाई तथा भावज को भी आमन्त्रित किया। और साथ ही हमारे एक पुराने मित्र एक विख्यात पत्रकार लेखक मानववादी श्री श्वार्टज तथा उनकी पत्नी को भी आमन्त्रित किया स्टीवन वार्टज जब मैं बर्जीनियाबीच में १५ वर्ष पूर्व स्थायी रूप से रहता था वह भी वहीं रहते थे। उन्होंने १९७५ में वहाँ के दैनिकपत्र में मेरे ऊपर एक लेख भी लिखा था, जिस में सच्चा गुरू तथा गुरु मत क्या है। इस पर प्रकाश डाला गया था। श्वार्टज एक बहुत ही उच्च विचार के व्यक्ति खोजी तथा बुद्धिजीवी मानव हैं। भोजन के दौरान उन्होंने रूहानियत के बारे में बहुत से प्रश्न किये जिनका मैंने समाधान किया. जिसके फलस्वरूप वह संध्या रोचक सत्संग में बदल गई। जाहन रीडन तथा मेरियन ने भी इस वार्तालाप में बहुत रुचि ली। मेरे प्यारे सत्संगियो! 'वास्तव में हमारा सारा जीवन ही एक प्रकार का सत्संग है। यदि आप शुभ संकल्प' पर चल रहे हैं और यह जानते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति परमतत्व

का ही अंश है तो आपके कर्म सहज में ही कट जायेंगे। यदि आप सद्गुरु के प्रेम में ओम प्रोत रहते हुए खायें तो राधा-स्वामी के लिये पीयें और हर एक व्यक्ति के अन्तर में राधा-स्वामी की ही झलक देखें तो आपको सहज समाधि का अनुभव हो जायेगा और आप कबीर के इस पद को समझ जायेंगे—

'लेटे, बैठे, खड़े उताने, कह कबीर हम उसी ठिकाने।'

गुरू की आज्ञा का पालन करते हुए मैं और अधिक से अधिक समय ऐसी ही अवस्था में रहता हूं। आपका निःस्वार्थ प्रेम तथा अगाध श्रद्धा, मेरी इस राधास्वामी अवस्था को और भी मजबूत बनाते रहते है।

४ सितम्बर को हम रोहित के घर से फिर डा० कौशिक के घर वापिस आ गये। उसी ही दिन मुझेमेरे प्यारे डा० सुरेश लोढा के घर सेन्टामेरिया में जाना था। डा० सुरेश तथा उनकी सुयोग्या श्रद्धालु पत्नी, विमला जी उदयपुर से आये हुए विख्यात डा० शूरवीर सिंह तथा उनकी पत्नी के साथ सैनडीगो में एक रमणीय स्थान को देखने के लिये गये हुये थे उन्होंने डा० कौशिक के घर से वापसी में मुझे अपने घर से जाना था। परन्तु बाद में उन्होंने टेलीफोन किया कि उनकी वापसी में डा०कौशिक के घर पर आकर मुझे वहाँ से ले जाना सम्भव नहीं था। इसलिये उन्होंने मेरे से प्रार्थना की कि मैं श्री जाहन तथा उनकी पत्नी के साथ उनकी खूबसूरत आराम-दायक बैन में ही उनके घर आ जाऊं। अतः हम शाम को ५ बजे के लगभग वहाँ से चल दिये।

उनका बैन समुद्र के किनारे-किनारे बनी सड़क पर चल रही थी। यात्रा बहुत ही सुहावनी थी। वह चन्द्रमा जिसे

हवाई जहाज से मैं हमेशा नीचे ही देखा करता था, उस समय वह ऊपर चाँदनी की वर्षा कर रहा था। मेरे प्यारो ! वह दृश्य बहुत ही सुन्दर था। मालिक ने अमरीका का बहुत ही सुन्दर बनाया है। कभी-कभी तो ऐसा महसूस होता है कि हम परियों के सुन्दर देश में घूम रहे हैं। समुद्र के किनारे बनी हुई विशाल सड़क पर ७० मील प्रति घण्टा की रफ्तार से जाती हुई हमारी बैन, और उसमें बैठे हुए हमारा वार्तालाप बहुत ही सुन्दर सत्संग में बदल गया। हमने रात्रि के भोजन के लिये अपने साथ कुछ सेन्डविच इत्यादि कुछ चलते समय बनवा लिये थे। लगभग ८॥ बजे जब हमें भूख लगी, तो मेरीयन ने सलाह दी कि हम समुद्र के किनारे पर किसी सुन्दर स्थान पर बैठ कर भोजन करें। जाहन ने अपनी बैन को हाईवे से नीचे उतारकर एक छोटी सड़क पर दिया और बैन समुद्र के किनारे फिर चलने लगी। हम समुद्र के किनारे शान्त महासागर की लहरों का राग भली भाँति सुन रहे थे। लहरों की सुन्दर रागनी, आकाश में चमकता हुआ चाँद तथा उसकी सुहावनी चाँदनी तथा सितारे अपनी अनुपम छटा दिखा रहे थे। बहुत ही सुन्दर तथा शान्त वातावरण था। जाहन ने बैन को एक किनारे पर खड़ा कर दिया। हम गाड़ी से बाहर निकले। अमेरिका में बहुत सुन्दर-२ स्थानों पर यात्रियों की सुविधा तथा आराम के लिये जगह-जगह पर कुर्सियाँ तथा पिकनिक की मेजें लगी रहती हैं। हमने एक अति सुन्दर स्थान चुना। वहाँ मेज पर खाने-पीने का सामान फैला कर हम कुर्सियों पर बैठ गये और बड़े आनन्द से भोजन खाया आस-पास कोई बिजली की रोशनी नहीं थी, इसलिये चाँदनी की कुदरती रोशनी और भी सुन्दर लग रही थी। उस समय

मुझे अचानक निम्नलिखित पद्य याद आ गया :—

विमल इन्दु की विशाल किरणें, प्रकाश तेरा बता रही हैं।
अनादि तेरी अनन्त माया, जगत को लीला दिखा रही हैं ।।

प्रसार तेरी दया का कितना यह देखना है तो देखो सागर।
तेरी प्रशंसा का राग प्यारे, तरंग मालायें गा रही हैं ।।

तेरी स्मित जिसे हो निरखना, वह देख सकता है चन्द्रिका को
तेरे ही हँसने की धुन में, नदियां निनाद करती जा रही हैं ।।

दयाल पुरुष की अपार दया का अनुभव करते हुए हम कुछ समय के लिये शान्त महासागर के तट पर शान्त बैठे रहे और हमारी एक प्रकार से सहज समाधि लग गई। करीब एक घंटे की सहज समाधि की अवस्था के पश्चात, हमने अपनी यात्रा फिर से आरम्भ कर दी और रात के ११ बजे डा० लोढा के घर पहुंचे। लोढा परिवार हमसे १९७५ से परिचित है सुरेश तथा विमला को मालूम था कि ५ सितम्बर को मेरा जन्म-दिवस है, इसलिये उस दिन बहुत से लोगों को बुलाकर मेरा जन्म दिन मनाया। प्रातःकाल जालण्धर से मेरे प्यारे बेटे श्री त्रिलोक शर्मा को सुरेश के घर टेलीफोन आया। उसने मुझे बधाई दी और बताया कि मानवता मंदिर होशियारपुर में बहुत से सत्संगी मेरा जण्म दिन मनाने के लिये आये थे और इस उपलक्ष्य में भण्डारा भी हुआ। थोड़ी देर के बाद आचार्य शब्दानंद, कु० साधना, कु० पूजा, श्रीमती राजकुमारी श्री रवि नण्दा रेणु तथा प्रदीप खण्ना के भी शुभकामना के लिये टेलीफोन आये। मेरे अपने ही अंशो ! आप सबके प्रेम की भी मिसाल नहीं है। मैं जहां पर भी होऊँ आपके प्यार की लहरें मेरे तक पहुंचती रहती हैं। क्या आप समझते हैं कि केवल

आप ही मुझसे प्यार करते है। मैं भी आपको बहुत प्यार करता हू। मैं सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आप सदा सुखी, स्वस्थ तथा समृद्धशाली रहें। मेरे प्यारो ! इसी मासिक संदेश के द्वारा मैं हर महीने आपसे बात कर लेता हूँ। यह मासिक सन्देश हममें लगातार सम्बंध बनाये रखने का एकमात्र रास्ता है और देखा जाय तो यह सम्बंध ही तरने का तार है। जिसके बारे में दातादयाल जी ने बहुत ही सुन्दर शब्दों में कहा है—

तारने वाले ने तारा, तर गये हम तर गये।
जिनको तरना था तरे, भवनिधि के वह तट पर गये ।।
तारने वाले ने तारा, तार करने का बण्धा।
अब नहीं तरने में संशय, उसके जो दर पर गये ।।

उस दिन मैं सुरेश लोढा के नगर से रवाना होकर हवाई जहाज से लास एनजलस पहुंचा। जाहन तथा मेरीयन वहाँ से अपनी बैन से ही अपने घर चले गये थे। मैं लास एंजलाज़ के हवाई अड्डे से क्लीवलेण्ड में अपने बड़े लड़के अरुण के घर के लिये रवाना हो गया। रास्ते में मुझ एटलांटा जार्जिया में रुकना पड़ा जहाँ मेरा छोटा लड़का प्रियदर्शी रहता है। हवाई अड्डे पर प्रियदर्शी, भाग्यमाता जी तथा आचार्य क० पी०वर्मा जो दर्शी के घर रह गये थे, मुझसे मिलने आये। मेरे प्यारे सत्संगियो ! इस दौरे में मैं दर्शी के घर एक दिन भी नहीं रह सका। पूरे दौरे में बस एक घण्टे के लिये ही उसे केवल हवाई अड्डे पर ही मिल सका, क्योंकि समय ही नहीं था। मेरे प्यारो ! मैं अपने गुरू की आज्ञा का पालन कर रहा हूँ, मेरे बेटे यह जानते हैं इसलिये वे कभी इसकी शिकायत नहीं करते कि मैं उनके पास रहता नहीं। प्रिय अरुण के पास भी मैं केवल एक ही रात रहा। नण्हे पुत्र के बार-बार कहने पर भी

मैं वहाँ अधिक नहीं रुक सका। आचार्य वर्मा को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैं अपने बच्चों के पास रह भी नहीं पाता। दर्शी को देखकर उनकी आँखों में आँसू आ गये।

८ सितम्बर को मैं अमृतसर के श्री बी० बी० भटनागर तथा उनके पुत्र डा० राहुल के घर ण्यहैम्पशायर में गया वहां डा० राहुल तथा उनकी सुयोग्या पत्नी ने अपने मकान में एक सत्संग का आयोजन किया था। जिसमें लगभग ३० सत्संगी आये उनमें मेरी भांजी (कृष्णा, बम्बई वाली की लड़की) कु० नमिता भी सम्मिलित थी। उसके बाद मैं जयपुर के श्री जी० पी० भटनागर के श्रद्धालु पुत्र डा० मुकुल के घर भी गया। पूरे भटनागर परिवार की श्रद्धा की मिसाल नहीं।

१० सितम्बर को मैं वाशिंगटन डी० सी० में पहुंचा। भाग्य माताजी तथा आचार्य वर्मा प्रियदर्शी के घर से वाशिंगटन एक दिन पहले ही पहुँच गये थे। शाम को ३ बजे बाल्टीमोर नगर के हेंरिटेज मैथोडिस्ट चर्च में मेरा सत्संग था। वहां के सुनने वाले सभी अमेरिकन ही थे। मेरे एक सत्संग का विषय था "सुरत शब्द योग"। सत्संग आरम्भ होने से पहले आचार्य के. पी वर्मा ने मेरा परिचय देने के लिये बहुत ही सुन्दर प्रवचन दिया। उन्होंने बहुत ही सरल तथा सन्दर अंग्रेजी में गुरू के महत्व की व्याख्या की। मैंने भी लगभग एक घण्टे तक सन्त मत में सुरत-शब्द-योग के महत्व पर प्रकाश डाला और उन की विधि भी बतायी। उसके बाद श्रोताओं ने बहुत से प्रश्न किये और उनका उत्तर देकर मैंने उनकी शंकाओं का समाधान किया। अन्त में लगभग २० मिनट के लिये सामूहिक समाधि लगाई गई। मैंने पहले भी आपको कई बार बताया है कि

पश्चिम में विशेकर अमरीका में सामूहिक समाधि की परम्परा प्रचलित है। सामूहिक समाधि से वातावरण शुद्ध होता है और बातावरण शुद्ध होने से समाज का आध्यात्मिक विकास होता है और समाज का उत्थान होने से देश का उत्थान होता है। देशों के उत्थान से संसार में शान्ति का साम्राज्य होता है। सामूहिक समाधि में शामिल होने वाले व्यक्ति, पहले अपने २ घण्टों में नित्य प्रति एकान्त में बैठकर व्यक्तिगत समाधि लगाते हैं। व्यक्तिगत समाधि से सामूहिक समाधि को बल मिलता है और सामूहिक समाधि को व्यक्तिगत समाधि का अभ्यास आगे बढ़ाता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि व्यक्ति समाज का अभिन्न अंग है। और समाज व्यक्तियों से बनता है। इसी प्रकार जीवात्मा परमात्मा का अभिन्न अंग है और परमात्मा व्यक्तियों की समष्टि है। इस भेद की व्याख्या करने के लिये दातादयाल जी महाराज ने कहा है :—

बुन्द में सिन्ध सिंध में बूंदें, बुन्द सिंध दोऊ एक हुए।
बुन्द सिंध का झगड़ा मन में, उनके लिये अनेक हुए॥

राधास्वामी सद्गुरु आये भेद दिया पूरा-पूरा।
जो कोई भेद भाव को मेटे, सद्गुरु का सेवक पूरा॥

मैं चाहता हूँ कि हमारे मानवता मन्दिर तथा सभी दूसरे केन्द्रों पर भी थोड़े समय के लिये कम से कम प्रति रविवार को सामूहिक समाधि की परम्परा को आरम्भ किया जाय। ताकि प्रत्येक व्यक्ति विशेष शुभ शक्ति का अनुभव करे, जिस से व्यक्ति-व्यक्ति यथा समाज में जो भेद भाव है वातावरण के शुद्ध होने से वह मिट जाय।

दूसरे दिन प्रातःकाल लगभग ११॥ बजे हम वाशिंगटन

हवाई अड्डे पर पहुँचे। वहाँ से मैं ट्रिनिडाड और आचार्य के० पी० वर्मा भारत के लिये रवाना हो गये। और भाग्य माता व श्री जाहन तथा मूजन के घर चली गईं, क्योंकि दूसरे दिन डा० एलबर्ट के साथ आपरेशन के विषय में भेंट करनी थी। यह है इस मास का ब्यौरा। इसके बाद की घटनाओं की सूचना मैं आपको अगले मासिक सन्देश में दूंगा।

इन्ही शब्दों के साथ ऐ मेरे प्यारो ! मैं आपको सात समुद्र के पार बैठा हुआ फरवरी के महीने की शुभकामनाऐं भेज रहा हूँ और सच्चे दिल से चाहता हूँ कि आपके लिये यह महीना कल्याणकारी हो। सब सुखी रहो।

सबको राधास्वामी !!!

आपका ही फकीरमय
मानव

श्री प्रदीप वाही का मकान
७९/५ डेक्लारेशन लेन
पोटामक, मेरी लैण्ड, अमेरिका

दिसम्बर १२, १९८९

—:०:—

R. S.

'प्रेमधारा' गाफिल शब्दावली से—

शब्द

तेरे बिना कौन है दाता, मेरा इस संसार में।
तुम लगा दो पार मुझको किश्ती बहे मंझदार में।१।

भूल की मैंने जो समझा मेरा घर और वाहर है।
अब समझ मुझको पड़ी,मेरा नहीं कोई परिवार है।२।

तेरी यह लीला थी जिसे,गलती से समझा गलत मैं।
अपनी खुदगर्जी का परदा ले गया था मुझे गार में।३।

तेरी संगत गर न मिलती कौन समझाता मुझे।
भेद कैसे मिलता मुझको, वार में और पार में।४।

तू ही साधू सन्त तू ही गुरु तू ही चेला तू ही।
तू ही कौरव तू ही पाँडव तू ही कृष्ण मुरार में।५।

देखने वाली नजर कैसे मिले क्यों कर मिले।
खाली जा सकता नही, जो आया इस दरवार में।६।

जादू कर देती है तेरी, चश्म रूहानी मदाम।
मस्त हो जाते हैं सब, ऐसा असर गुफ्तार में।७।

बस गया है जिसके दिल में,उसको है परवाह क्या।
गूंजते हो शब्द बनकर,'गाफिल' की हर रग तार में।८।

०:०:—

नुष्य बनो” (हिन्दी मासिक पत्र) समाचार पत्र
न्द्रीय) अधिनियम १९५६ नियम ८ फार्म ४ के
अनुसार अपेक्षित आवश्यक सूचना

-प्रकाशन का स्थान	:	अलीगढ़
-प्रकाशन अवधि	:	मासिक
-मुद्रक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
-राष्ट्रीयता	:	भारतीय
-पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
-प्रकाशक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
सम्पादक का नाम	:	श्रीमती सुधा मीतल
राष्ट्रीयता	:	भारतीय
पता	:	शिव भवन, लेखराज नगर, अलीगढ़।
स्वत्वाधिकारी	:	श्रीमती सुधा मीतल
संरक्षक	:	परमदयाल फकीरचन्द्र जी महाराज

-मैं सुधा मीतल घोषित करती हूं कि उपर्युक्त विवरण मेरी जानकारी और विवरण के अनुसार सही है।

क १५ नव०, १९८८

सुधा मित्तल
प्रकाशक के हस्ताक्षर

Regd. NO L—ALG.28

'मनुष्य बनो' कार्यालय

शिव भवन, लेखराज नगर

अलीगढ़—२०२००१ (उ० प्र०)

महेशचन्द्र मीतल

सम्पादक, व्यवस्थापक व प्रकाशक

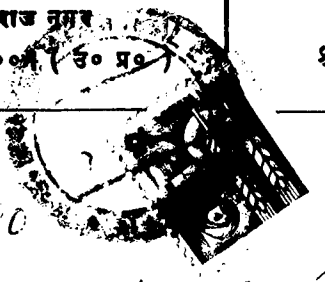

श्रीमती सुधा मीतल

ग्राहक संख्या— 1090

श्रीमान् Sri Vithal Rao Asst. Teacher

Z. P. H. S. Madnoor

TQ - Madnoor, Dist- Nizamabad

AP

24.3.90 DELY MADNOOR

मुद्रक : श्रीमती सुधा मीतल, दातादयाल प्रिंटर्स, लेखराज नगर, ।

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL